

विवाह [Marriage]



हमारे देश भारत में विवाह एक अत्यन्त प्राचीन, अनिवार्य एवं सार्वभौम संस्था है जो किसी-न-किसी रूप में प्रत्येक समाज में पायी जाती है। विवाह वह आधार है जिस पर समाज की प्रारम्भिक इकाई—परिवार का निर्माण होता है। विवाह प्रत्येक समाज में पाई जाने वाली उस संस्था का नाम है जिसके अन्तर्गत स्त्री-पुरुष में परिवार बसाने के लिए आवश्यक सम्बन्ध (जिसमें यौन सम्बन्ध भी शामिल हैं) स्थापित एवं स्थिर रखे जाने की व्यवस्था होती है।

विवाह का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Marriage)

विवाह एक सार्वभौमिक एवं अनिवार्य संस्था है, जो हर समाज में विभिन्न संस्कारों एवं कर्मकाण्डों द्वारा सम्पन्न किया जाता है। यह स्त्री एवं पुरुष को यौन सम्बन्ध स्थापित करने एवं बच्चों को जन्म की सामाजिक वैधता प्रदान करता है। दूसरे शब्दों में, विवाह लैंगिक सम्बन्धों के नियन्त्रण पर आधारित एक स्थायी सामाजिक संस्था है जो कि स्त्री और पुरुष को पति-पत्नी के रूप में परिभाषित करता है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, “Marriage is a legally recognized social contract between two people, traditionally based on a sexual relationship and implying a permanence of the union.”

विभिन्न विद्वानों ने विवाह को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

“विवाह स्त्री-पुरुष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की एक संस्था है।”—बोगार्डस
इन्होंने अति सरल भाषा में विवाह को परिभाषित करते हुए पारिवारिक जीवन में प्रवेश का एक माध्यम माना है।

“विवाह एक प्रजनन मूलक परिवार की स्थापना के लिए समाज स्वीकृत माध्यम है।”—गिलिन एवं गिलिन

ये विवाह को सन्तानोत्पत्ति करने वाले मान्यता प्राप्त परिवार की स्थापना के साधन के रूप में मानते हैं।

“विवाह उस स्पष्टतः स्वीकृत सम्बन्ध को स्पष्ट करता है जो कि इन्द्रिय सम्बन्धी सन्तोष के पश्चात् भी रहता है और पारिवारिक जीवन की आधारशिला है।”—लॉबी

इनके अनुसार विवाह द्वारा पति-पत्नी के उन सम्बन्धों को मान्यता प्राप्त होती है जो यौन सन्तुष्टि के बाद भी बने रहते हैं और परिवार का आधार है।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त एक ऐसी संस्था है जो स्त्री, पुरुष के यौन सम्बन्धों को नियमित कर परिवार का निर्माण करती है, बच्चों के जन्म व पालन-पोषण तथा आर्थिक सहकारिता तथा सामाजिक उत्तरदायित्व की नींव बनाती है और एक स्थायी आधार प्रदान करती है। विवाह समाज की अनिवार्यता है तथा समाज विशेष की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित करने का माध्यम है। यह एक सार्वभौम संस्था है। स्थान, समय एवं संस्कृति के आधार पर इसका स्वरूप भिन्न-भिन्न होता है।

विवाह के उद्देश्य (Aims of Marriage)

प्रत्येक संस्था के कुछ-न-कुछ उद्देश्य होते हैं जिनकी पूर्ति करने के लिए उसकी स्थापना की जाती है। विवाह संस्था भी कुछ उद्देश्यों की पूर्ति के लिए बनायी गयी है। विवाह के उद्देश्य अग्रलिखित हैं—

1. **परिवार का निर्माण एवं नातेदारी का विस्तार**—विवाह परिवार, जो कि समाज की मुख्य इकाई है, का आधार है। विवाह ही परिवार का निर्माण करता है, विवाह के कारण ही नातेदारी व्यवस्था का निर्माण होता है तथा सामाजिक सम्बन्धों का विस्तार होता है।
2. **सन्तानोत्पत्ति**—विवाह का लक्ष्य सन्तानोत्पत्ति है। व्यक्ति वंश की निरन्तरता बनाये रखने के लिए सन्तान उत्पन्न करता है। सन्तानोत्पत्ति से वंश की निरन्तरता के साथ-साथ समाज की निरन्तरता भी बनी रहती है।
3. **यौन सुख की सन्तुष्टि**—विवाह का उद्देश्य यौन सुख की सन्तुष्टि है। कामवासना की पूर्ति मनुष्य की जैविकीय आवश्यकता है। विवाह द्वारा व्यक्ति को कामवासना की तृप्ति की सामाजिक एवं वैधानिक स्वीकृति प्राप्त हो जाती है।
4. **सामाजिक उद्देश्य**—विवाह परिवार का आधार है। परिवार में ही सन्तान के समाजीकरण की प्रक्रिया आरम्भ होती है। विवाह समाज की निरन्तरता को बनाये रखने का प्रमुख साधन है। विवाह समाज को विघटन से बचाता है। सन्तान द्वारा वंश की सुरक्षा होती है।
5. **यौन सम्बन्धों की नियमितता**—विवाह का मुख्य उद्देश्य स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों को नियमित करना है। स्वतन्त्र यौन सम्बन्धों पर नियन्त्रण रखना है ताकि समाज में व्यभिचार की रोकथाम हो सके।
6. **सन्तान का पालन-पोषण**—विवाह समाज की महत्वपूर्ण इकाई परिवार का आधार है। केवल सन्तानोत्पत्ति ही नहीं अपितु सन्तान के पालन-पोषण के लिए एक घर, निवास या गृहस्थी देकर उन्हें एक स्थायी आधार प्रदान करता है।
7. **स्त्री-पुरुष में आर्थिक सहयोग पैदा करना**—विवाह का एक उद्देश्य आर्थिक हितों की रक्षा कर स्त्री-पुरुष में आर्थिक सहयोग पैदा करना है। एक-दूसरे के सहयोग से ही वे अपना तथा बच्चों का भरण-पोषण करते हैं।
8. **संस्कृति का पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तान्तरण**—विवाह का एक लक्ष्य समाज विशिष्ट की संस्कृति को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाना भी है जिससे परिवार व समाज में संस्कृति की निरन्तरता बनी रहती है।
9. **मानसिक सन्तोष प्रदान करना**—विवाह का उद्देश्य मनुष्य को मानसिक शान्ति प्रदान करना है। यौन इच्छाओं की पूर्ति के अतिरिक्त मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक तथा वैयक्तिक आवश्यकताएँ तथा इच्छाएँ होती हैं जिनके लिए उसे संगठन की आवश्यकता पड़ती है। संगठन का प्राथमिक आधार परिवार है और परिवार की स्थापना विवाह द्वारा होती है। इस प्रकार विवाह का लक्ष्य मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक एवं वैयक्तिक इच्छाओं की पूर्ति का मानसिक सन्तोष प्रदान करना है।

अतः स्पष्ट है कि विवाह का एकमात्र उद्देश्य यौन इच्छाओं की पूर्ति नहीं अपितु सन्तानोत्पत्ति बच्चों का पालन-पोषण तथा आर्थिक सहयोग प्रदान करना है। इसके अतिरिक्त समाज तथा संस्कृति दोनों के अस्तित्व एवं निरन्तरता को बनाये रखना है।

विवाह के प्रकार (भेद) (Forms of Marriage)

मानव समाज के विकास के साथ-साथ विवाह के भी विभिन्न प्रकार अस्तित्व में आये हैं। पति-पत्नियों की संख्या के आधार पर विवाह के निम्नलिखित प्रकार बताये गये हैं—

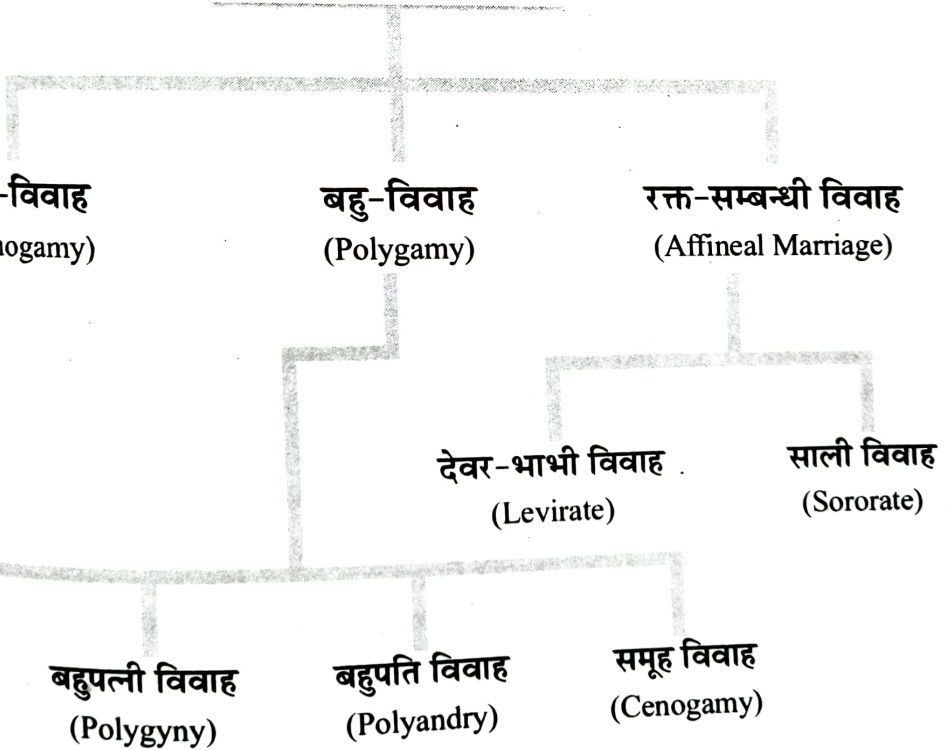
❖ एक-विवाह (Monogamy)

पिडिंग्टन के अनुसार, “एक-विवाह, विवाह का वह स्वरूप है जिसमें कोई भी व्यक्ति एक समय में एक व्यक्ति से ज्यादा के साथ विवाह नहीं कर सकता।” अर्थात् एक-विवाह वह विवाह है जब एक मनुष्य एक स्त्री से अथवा एक स्त्री केवल एक पुरुष से ही विवाह करती है। यह सम्बन्ध केवल मृत्यु अथवा विवाह-विच्छेद द्वारा ही विच्छिन्न किया जा सकता है। पत्नी अथवा पति दोनों में से एक की मृत्यु होने पर दूसरा पक्ष पुनः विवाह कर सकता है। सभी सभ्य समाजों में एक विवाह का ही प्रचलन है। मैलिनोवास्की के अनुसार, “एक-विवाह ही विवाह का वास्तविक स्वरूप है।”

एक-विवाह के कारण (Causes of Monogamy)—एक-विवाह के निम्न कारण होते हैं—
 1. आर्थिक कठिनाइयों के कारण पति को एक से ज्यादा पत्नियों का व्यय उठाना कठिन होता है।
 2. जिन समाजों में स्त्री-पुरुष का एक समान अनुपात होता है। वहाँ पर एक विवाह ही सुविधाजनक होता है।
 3. परिवार में एक स्त्री से विवाह परिवार में संघर्षों एवं क्लेशों से बचने के लिए किया जाता है क्योंकि अनेक स्त्रियों से विवाह करने से उनकी आपस की ईर्ष्या की भावना के कारण परिवार में अशान्ति उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है।

एक-विवाह की उपयोगिता अथवा लाभ (Utility or Advantages of Monogamy)
 एक-विवाह की उपयोगिता (लाभ) को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—
 1. यह एक आदर्श विवाह होता है तथा सबसे ज्यादा स्थायी होता है।
 2. एक-विवाही परिवार में बच्चों का लालन-पालन, समाजीकरण एवं शिक्षा का कार्य समुचित प्रकार से सम्पन्न होता है।
 3. इस विवाह से निर्मित परिवार में स्त्रियों की स्थिति सन्तोषजनक तथा प्रतिष्ठा ऊँची होती है।
 4. एक-विवाही परिवार में आर्थिक कठिनाइयाँ कम होती हैं। अतः परिवार की आवश्यकताओं की पूर्ति सरलता से होती रहती है।
 5. एक-विवाही परिवार में संघर्षों के अभाव में मानसिक तनाव भी कम पाया जाता है।
 6. इसमें पति-पत्नी के सम्बन्धों में मधुरता बनी रहती है।
 7. एक-विवाही परिवार का जीवन स्तर ऊँचा होता है।
 8. ऐसे विवाह से स्थापित परिवार में सन्तानों की संख्या कम होती है।
 अतः परिवार छोटा एवं सुखी होता है।

विवाह के प्रकार



❖ **बहु-विवाह (Polygamy)**
 जब एक अधिक पुरुषों अथवा स्त्रियाँ विवाह बन्धन में बँधते हैं तो ऐसे विवाह को बहु-विवाह कहते हैं। बलसारा अर्थात् इसमें एक स्त्री के एक से ज्यादा पति हों अथवा एक पुरुष के एक से ज्यादा पत्नियाँ हों। बलसारा ने बहु-विवाह की परिभाषा करते हुए लिखा है, “विवाह के वे प्रकार जिनमें सदस्यों की बाहुल्यता होती है, बहु-विवाह कहलाते हैं।”

बहु विवाह सर्वव्यापी प्रथा है। यह भारत में टोडा, नागा, बैगा, गोंड तथा मध्य भारत में प्रोटो-ऑस्ट्रोलॉयड जनजातियों में तथा पूर्वी अफ्रीका के बेगण्डा जाति में सबसे ज्यादा पाया जाता है।

1. **द्विपत्नी विवाह (Bigamy)**—द्विपत्नी विवाह में एक पुरुष एक ही समय में दो स्त्रियों से विवाह करता है। पुत्र की इच्छा के कारण होता है। अधिकांशतः पत्नी की बहन से ही यह दूसरी शादी हो जाती है। ऐसे विवाहों का प्रचलन बहुधा आदिम समाजों में देखने को मिलता है।
2. **बहुपत्नी विवाह (Polygyny)**—इस विवाह में एक पुरुष एक ही समय में एक से ज्यादा स्त्रियों से विवाह करता है। बहुपत्नी विवाह का प्रचलन ज्यादातर धनी वर्ग तथा जनजातियों में पायी जाती है। अल्टेकर का मत है कि बहुपत्नी प्रथा धनी, शासक एवं अभिजात वर्ग के लोगों में सामान्य थी। यह प्रथा नागा, गोंड, बैगा, टोडा, लुशाई तथा मध्य प्रदेश की कुछ जनजातियों में पायी जाती है।

बहुपत्नी विवाह के कारण (Causes of Polygyny)—बहुपत्नी-विवाह के निम्न कारण होते हैं— 1. प्रथम पत्नी से पुत्र न उत्पन्न होने पर वंश की निरन्तरता बनाये रखने के लिए दूसरी स्त्री से विवाह किया जाता है। 2. कहीं-कहीं समाज में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या ज्यादा होती है वहाँ एक पुरुष एक से ज्यादा स्त्रियों से विवाह करता है। 3. कुछ लोग ज्यादा से ज्यादा पत्नियों को रखना सामाजिक प्रतिष्ठा का द्योतक मानते हैं और कई स्त्रियों से विवाह करते हैं। 4. धनोपार्जन में स्त्रियों के महत्त्व के कारण भी बहुपत्नी विवाह को प्रोत्साहन मिला। कृषि आदि कार्यों को करने में ज्यादा-से-ज्यादा स्त्रियों की आवश्यकता हुआ करती थी इसीलिए बहुपत्नी विवाह किया जाता था। पत्नियों के अलावा उनकी सन्तानों के रूप में भी विश्वस्त श्रमिक उपलब्ध हो जाते थे। 5. देहेज प्रथा के कारण भी पुरुष में लालची प्रवृत्ति आई। अतएव एक से ज्यादा विवाह करने की उसे प्रेरणा मिली। 6. पुरुषों में कामवासना की अधिकता एवं नवीन यौन अनुभव की इच्छा ने भी बहुपत्नी विवाह को प्रोत्साहन दिया। 7. जिन समाजों में साली विवाह का प्रचलन है वहाँ पुरुष को अपनी पत्नी की सभी बहनों से भी विवाह करना पड़ता है। 8. कुछ समाजों में देवर विवाह का प्रचलन है। अतः भाई की मृत्यु के पश्चात् उसे उसकी विधवा स्त्री से विवाह करना पड़ता है। इसमें जीवित भाई की पत्नियों की संख्या बढ़ जाती है। 9. बुढ़ापे में सेवा शुश्रूषा के लिए पत्नियों की आवश्यकता होती है। इसलिए भी बहुपत्नी विवाह का प्रचलन हुआ।

बहुपत्नी विवाह से हानियाँ (Disadvantages of Polygyny)—बहुपत्नी-विवाह से निम्न हानियाँ हैं— 1. परिवार में जगता सदस्यों के हो जाने के कारण आर्थिक व्यवस्था खराब हो जाती है। 2. ज्यादा पत्नियाँ होने के कारण परिवार में ईर्ष्या, द्वेष, लड़ाई-झगड़े के कारण मानसिक शान्ति भंग हो जाती है। 3. ज्यादा पत्नियाँ होने के कारण पुरुष को उन्हें नियन्त्रण में रखना कठिन हो जाता है। 4. स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में गिरावट आ जाती है। 5. सम्पत्ति विभाजन की अनेकों समस्याएँ उठ खड़ी होती हैं। 6. कई पत्नियाँ होने से परिवार में सन्तानों की संख्या बढ़ जाती है जिसमें उन सभी की शिक्षा-दीक्षा व पालन-पोषण करना कठिन हो जाता है। 7. पुरुषों में यौन सम्बन्धी रोग विकार की संभावना बढ़ जाती है।

3. **बहुपति विवाह (Polyandry)**—बहुपति विवाह का अर्थ है एक स्त्री का एक समय में दो या दो से ज्यादा पुरुषों के साथ विवाह होना। यह विवाह ज्यादातर जनजातियों में पाया जाता है। महाभारत युग में भी इसका प्रचलन था। पाँच पाण्डवों से द्रौपदी का विवाह इसका उदाहरण है। भारत में आजकल यह विवाह टोडा, खस जनजाति तथा नायरों में पाया जाता है। बहुपति विवाह प्रायः निम्न दो स्वरूपों में उपस्थित है—

(a) **भ्रातृ सम्बन्धी बहुपति विवाह (Fraternal Polyandry)**—इस विवाह में स्त्री के सभी पति सहोदर भ्राता होते हैं। बड़े भाई के विवाह करने पर उसकी पत्नी प्रथा से ही अनुज भ्राताओं की पत्नी बन जाती है। यदि भ्राता छोटे हैं तो किशोरावस्था पार करने पर अपने आप उसके पति बन जाते हैं। यह विवाह भारत में खस, टोडा जातियों, हिमालय प्रदेश के लद्दाख और तिब्बत में प्रचलित हैं। इस विवाह के बाद में पैदा होने वाले भाई भी पति बन जाते हैं।

(b) **अभ्रातृ बहुपति विवाह (Non-Fraternal Polyandry)**—इस प्रकार के विवाह में एक स्त्री के अनेकों पति आपस में भाई न होकर अनेक गोत्रों के व्यक्ति होते हैं। जो एक-दूसरे से अपरिचित होते हैं। यह विवाह दक्षिण भारत की जनजातियों विशेष रूप से मालाबार और कोचीन की नायर जातियों में पाया जाता है।

बहुपति विवाह के कारण (Causes of Polyandry)—बहुपति-विवाह के निम्न कारण होते हैं— 1. जिन समाजों में स्त्रियों की तुलना में पुरुष ज्यादा होते हैं वहाँ बहुपति विवाह प्रथा पायी जाती है। 2. दरिद्रता तथा स्त्रियों के अभाव के कारण वधू मूल्य ज्यादा होता है। इसलिए कई पुरुष मिलकर एक वधू का मूल्य चुकाकर उसे सामान्य रूप से पत्नी बना लेते हैं। 3. बढ़ती जनसंख्या को मर्यादित करने के लिए बहुपति विवाह किया जाता है क्योंकि इसमें सन्तानें कम होती हैं। 4. जहाँ कृषि योग्य भूमि का अभाव है और सम्पूर्ण प्रदेश पथरीला एवं पहाड़ी होता है। सभी भाई मिलकर ही परिवार की स्त्री व बच्चों का भरण-पोषण करते हैं। वहाँ बहुपति विवाह प्रोत्साहित होता है। 5. संयुक्त परिवार को सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बनाये रखने के लिए भ्राता सम्बन्धी बहुपति विवाह को विशेष रूप से प्रोत्साहन दिया जाता है। 6. सम्पत्ति विभाजन को रोकने के लिए बहुपति विवाह को प्रोत्साहित किया जाता है क्योंकि जब सभी भाई एक ही स्त्री के साथ एक परिवार में रहते हैं तो सम्पत्ति भी सामूहिक बनी रहती है। 7. धार्मिक परम्परा व मान्यता का निर्वहन यथा खस मन जाति स्वयं को पांडवों का वंशज मानते हैं।

परन्तु अब बहुपति विवाह को घृणा की दृष्टि से देखा जाता है इसी कारण धीरे-धीरे इसका लोप होता जा रहा है।

समूह विवाह (Cenogamy)—इस विवाह में पुरुषों का एक समूह स्त्रियों के दूसरे समूह से विवाह करता है। परन्तु समूह का प्रत्येक व्यक्ति समूह की प्रत्येक स्त्री से यौन सम्बन्ध रख सकता है। एक समूह के भाई दूसरे समूह की बहनों से भी शादी कर सकते हैं। इस प्रकार का विवाह बहुत कम समाजों में पाया जाता है।

❖ रक्त सम्बन्धी विवाह (Affineal Marriage)

रक्त सम्बन्धी विवाह के अन्तर्गत वे विवाह आते हैं जो विवाहित युग्म के परिवारों के बीच में होते हैं।
दूसरे शब्दों में इस विवाह के कारण सम्बन्धित दो व्यक्तियों में विवाह होता है।

इस विवाह के निम्न दो स्वरूप हैं—

देवर-भाभी विवाह (Levirate)—भाभी द्वारा देवर के साथ किया गया विवाह ही देवर-भाभी विवाह है। इस प्रकार के विवाह का उद्देश्य पूर्व विवाह द्वारा सम्बद्ध परिवारों को आबद्ध रखना है। भाई की मृत्यु के बाद भाभी की देखभाल तथा घर परिवार को विघटन से बचाने के लिए ही देवर-भाभी विवाह किया जाता है। इस प्रकार यह परिवार और गोत्र संगठन की रक्षा करता है।

साली विवाह (Sororate)—इसमें पुरुष पत्नी की बहन के साथ शादी करता है। एक पत्नी की मृत्यु के पश्चात् उसकी छोटी बहन से विवाह कर दिया जाता है। साली विवाह की प्रथा आमतौर से सभी समाजों में प्रचलित है।

विवाह का संस्थात्मक महत्त्व

Institutional Importance of Marriage)

भेन्न-भेन्न समाजों में विवाह के भिन्न-भिन्न रूप पाये जाते हैं परन्तु एक संस्था के रूप में विवाह सर्वव्यापी है और अपने महत्त्व की वजह से यह सभी समाजों में अनिवार्य रूप से विद्यमान है। विवाह का संस्थात्मक महत्त्व इसके उद्देश्यों एवं कार्यों में निहित है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, "The institution of marriage is the central draft of all the forms of human society which are a part of civilization. Marriage is the deepest as well as the most complex of all human relations because it is a difficult task for two people to lead their life together when they have their independent thinking and way of living. In Indian life, role expectations are highly specific and institutional in marriage, thus a woman's role in family has

विवाह के संस्थात्मक महत्त्व को निम्न शर्षकों के तहत स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **पारिवारिक जीवन की स्थापना**—विवाह की उत्पत्ति की मुख्य वजह पारिवारिक जीवन की स्थापना करना है। इस संदर्भ में बैकोफन एवं मार्गन ने कहा है कि आदिकाल में स्त्री-पुरुष के यौन सम्बन्धों पर कोई नियंत्रण नहीं था, तब ऐसा कोई भी नियम नहीं था जिससे व्यक्तियों के जीवन को नियंत्रण में रखा जा सके। इससे न सिर्फ संघर्ष अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गए अपितु बच्चे के पितृत्व का निर्धारण करना भी लगभग असंभव था। इन्हीं समस्याओं के निवारण हेतु विकास की एक लंबी प्रक्रिया के द्वारा विवाह जैसी संस्था का जन्म हुआ तथा इसी के द्वारा व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्धों को व्यवस्थित किया जा सका। चॉसर के अनुसार, "*Marriage is an institution that admits man and woman to family life. It is a stable relationship in which a man and a woman are socially permitted to live together without losing their status in the community. Marriage is not merely concerned with the couple; rather it affects the whole society and future generations. The responsibilities it entrusts a couple with are thus both heavy and delicate. In Hindu view, marriage is not a concession to human weakness, but a means for spiritual growth. Man and woman are soul mates who, through the institution of marriage, can direct the energy associated with their individual instincts and passion into the progress of their souls.*" विवाह के द्वारा ही परिवार बनता है और वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा ही नातेदारी व्यवस्था के तहत प्राथमिक समूहों का निर्माण होता है। इस तरह विवाह एक केंद्रीय संस्था है। विवाह में होने वाला कोई भी परिवर्तन सामाजिक संगठन और दूसरी संस्थाओं की क्रियाशीलता पर असर डालता है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, "*Marriage is the beginning—the beginning of the family—and is a life-long commitment. It also provides an opportunity to grow in selflessness as you serve your wife and children. Marriage is more than a physical union; it is also a spiritual and emotional union.*"
2. **बच्चों को वैध रूप प्रदान करना**—विवाह का एक संस्था के रूप में सम्भवतः सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य बच्चों को वैध रूप प्रदान करना है। विवाह की अनुपस्थिति में यदि बच्चे के पितृत्व को ज्ञात न किया जा सके तो समाज में ऐसे बच्चों की स्थिति सम्मानजनक नहीं होती। इससे समूह के नैतिक नियम भी खतरे में पड़ जाते हैं। इससे यौन-अनैतिकता में बढ़ोतरी होने की सम्भावना रहती है। विवाह इस समस्या का समाधान करके बच्चों को वैध रूप प्रदान करता है और उन्हें एक दृढ़ पारिवारिक परंपरा में बाँधता है। जिन समाजों में धार्मिक विश्वास तथा पवित्रता की धारणा का महत्त्व ज्यादा है, वहाँ तो बच्चों की वैधता ही उनकी सामाजिक स्थिति का सबसे बड़ा आधार बन जाती है। इस तरह, हमारे जैसे समाज में तो विवाह के बिना जन्म लेने वाले बच्चों का कोई सामाजिक अस्तित्व नहीं होता है।
3. **यौन सम्बन्धों की नियमबद्धता**—यौन संतुष्टि व्यक्ति की जैविकीय आवश्यकता है तथा बिना विवाह के इसे संस्थागत रूप से पूरा नहीं किया जा सकता। विवाह के द्वारा स्त्री पुरुष के स्वतंत्र सम्बन्धों की संभावना को ही कम नहीं किया जाता अपितु बच्चों और उनके माता-पिता के सम्बन्धों को एक मजबूत आधार प्रदान किया जाता है। यही सम्बन्ध व्यक्तिगत और सामुदायिक जीवन को संगठित बनाते हैं और सांस्कृतिक विकास हेतु अनुकूल वातावरण का निर्माण करते हैं। इस तरह विवाह मात्र एक संस्था ही नहीं है, अपितु सभी सामाजिक संस्थाओं में इसका काफी महत्त्व है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, "*After hunger, the main need of a man is the fulfilment of sexual urges. In every society, marriage is the main aim of the society to fulfil these urges.*" *Marriage is the beginning—the beginning of the family—and is a life-long commitment. It also provides an opportunity to grow in selflessness as you serve your wife and children. Marriage is more than a physical union; it is also a spiritual and emotional union.*"

4. **सामाजिक सम्बन्धों की सुदृढ़ता**—विवाह संस्था का सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था को प्रभावित करने में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका रही है। वैवाहिक सम्बन्धों की पृष्ठभूमि में ही बच्चा कुछ दूसरे व्यक्तियों से अपनी एकरूपता स्थापित करता है। इसका अभिप्राय है कि यही संस्था व्यक्ति को अपने रक्त सम्बन्धियों, नातेदारों व अन्य व्यक्तियों के मध्य अन्तर करना बतलाती है। विवाह से सम्बन्धित आदर्श नियम ही व्यक्ति में उचित और अनुचित की धारणा विकसित करते हैं। उचित और अनुचित की यही धारणा बाद में समाज की एक नैतिक व्यवस्था में बदलाव ला देती है। यदि विवाह जैसी कोई संस्था समाज में न होती तो सम्भवतः परिवार का निर्माण ही ना होता और यदि अस्थिर प्रकृति के परिवार बन भी जाते, तो उनकी कामाचार से रक्षा करना लगभग सम्भव नहीं हो पाता। इस तरह सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था को दृढ़ बनाने, अथवा अन्य शब्दों में समाज का निर्माण करने में विवाह के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती। इस सन्दर्भ में **हॉबेल** ने लिखा है कि “विवाह का मुख्य कार्य व्यक्तियों के सम्बन्धों को उनके रक्त सम्बन्धियों और नातेदारों के प्रति परिभाषित करना तथा उन पर नियन्त्रण रखना है।”
5. **संस्कृति का संचरण**—विवाह संस्था का एक मुख्य कार्य संस्कृति का एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को संचरित करने में मदद करना और इस तरह की संस्कृति को स्थायी (permanent) बनाना है। विवाह के अभाव में व्यक्ति के अनुभव पूर्णतया व्यक्तिगत होते हैं। विवाह के द्वारा एक वंश परम्परा का निर्माण होता है तथा सांस्कृतिक विशेषताएँ पिता से उसके पुत्र को प्राप्त होने से यह लगातार आगामी पीढ़ी को संचारित होती रहती है। इस तरह विवाह सिर्फ जैविक आधार पर ही महत्वपूर्ण नहीं है अपितु सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को व्यवस्थित रखने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।
6. **व्यक्ति का समाजीकरण**—विवाह संस्था व्यक्ति के समाजीकरण में भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह व्यक्ति को अपने से भिन्न विचारधारा, परंपरा और रहन-सहन के व्यक्तियों से अनुकूलन करना बतलाती है। विवाह संस्था व्यक्तियों को व्यक्तिवादिता की संकीर्णता से बाहर निकालकर पारिवारिक कल्याण की भावना को ज्यादा मजबूत बनाती है। यह त्याग को बढ़ावा देती है और पारस्परिक कर्तव्य के प्रति निष्ठा पैदा करती है। यही गुण एक मानव प्राणी को सामाजिक प्राणी के रूप में बदलते हैं।

विवाह के बदलते प्रतिमान

(Changing Patterns of Marriage)

वर्तमान समय में समाज ऐसे संक्रमण के स्तरों से गुजर रहा है, जिसमें शास्त्रीय विधि-विधानों के पुनर्परीक्षण, सरलीकरण एवं सुधार पर पश्चिमी सभ्यता के प्रभाव और व्यक्तिवादी धारणाओं के कारण से काफी बल दिया जा रहा है, जिसका परिणाम यह हुआ कि विवाह से सम्बन्धित मान्यताओं में परिवर्तन हुआ साथ ही इन परिवर्तनों को नवीन अधिनियम के द्वारा कानूनी रूप प्रदान करने की व्यवस्था कर दी गई है। इस तरह के विवाह से सम्बन्धित जो-जो परिवर्तन समाज में हुए उन्हें निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **मान्यताओं में परिवर्तन**—विवाह का धार्मिक पक्ष वर्तमान काल में तेजी से कमजोर पड़ता जा रहा है। वर्तमान समय में लोग विवाह सिर्फ काम, पारिवारिक आवश्यकताओं और अपने वंश में वृद्धि करने के उद्देश्य से ही करते हैं। आज के समय में व्यक्ति का विवाह करने का उद्देश्य धार्मिक दायित्वों की पूर्ति करना नहीं है जिसका परिणाम यह हो रहा है कि स्त्री और पुरुष आज विवाहित कम और अविवाहित ज्यादा होंगे। जो धार्मिक आदर्शों पर गहरा प्रभाव छोड़ रही है जिससे विवाह की मान्यताएं परिवर्तित हुई हैं, तब से इसके संस्थात्मक रूप में काफी बदलाव आया है। वर्तमान युवा पीढ़ी सपिंड गोत्र और सप्रवर आदि में विवाह न करने की प्रथा को नहीं मानती जैसे-जैसे शिक्षा का असर बढ़ रहा है, व्यक्ति वैसे-वैसे जागरूक हो रहे हैं, जिसका परिणाम यह हो रहा है कि वह इन मान्यताओं को नहीं समझते हैं और उन्हें खोखला मानते हैं।

2. **बाल विवाह पर रोक**—आज के समय में नये विचारों की वजह से बाल विवाह का प्रचलन काफी हद तक कम हो गया है। अब सिर्फ बालिग हो जाने पर ही लड़का या लड़की का विवाह किया जा सकता है और इसके साथ-साथ लड़की की इच्छा के अनुरूप वह जिस लड़के को अपने लिए चुनती है, उसी से उसका विवाह कराया जाता है।
3. **ऊँच-नीच का अंतर समाप्त**—वर्तमान युग में अनुलोम और प्रतिलोम विवाह निरंतर खत्म हो रहा है और अलग-अलग वर्णों के बीच विवाह के सम्बन्ध तेजी से बढ़ रहे हैं और साथ ही विभिन्न जातियों के मध्य जो ऊँच-नीच का अंतर है, वह उसके अंतर्गत टूटता जा रहा है। अब उच्च जातियों के वैवाहिक विशेषाधिकार हिन्दू विवाह अधिनियम 1955 की वजह से खत्म हो गये हैं, जिनकी वजह से भारत में एक व्यक्ति को एक से ज्यादा स्त्रियों से विवाह करने की आजादी थी जिसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू दांपत्य जीवन पहले की तुलना में ज्यादा संतुलित बन सका है।
4. **विवाह विच्छेद का प्रावधान**—वर्तमान समय में भी व्यक्ति अपनी इच्छा के अनुरूप अपना जीवन बिता सकते हैं, देश के कानून के द्वारा कोई व्यक्ति अगर अपने विवाह से संतुष्ट नहीं है तो वह विवाह विच्छेद (divorce) कर सकता है। इसलिए वर्तमान समय में विवाह को अटूट और अविच्छिन्न सम्बन्ध कहना बेकार ही है।
5. **स्त्रियों को स्वतंत्रता**—पहले के समय में विधवा विवाह पर रोक थी लेकिन जब हिन्दू विवाह में बदलाव आया तो समाज और परिवार में विधवाओं को नवीन अधिकार प्राप्त हो गए, जिसका परिणाम यह हुआ कि स्त्रियों का पुनर्विवाह करना समाज में उचित समझा जाने लगा। जिससे विवाह करने के लिए स्त्रियों को पूरी आजादी मिल गई। वह अपनी इच्छानुसार किसी से भी विवाह कर सकती थी।
6. **अंतर्जातीय विवाह में वृद्धि**—अंतर्जातीय विवाहों की संख्या में निरंतर बढ़ोत्तरी होती जा रही है जिसकी वजह व्यक्ति का शिक्षित होना तथा रोमांस का असर ज्यादा होना है। जिसका असर वैवाहिक मान्यताओं के साथ-साथ पारिवारिक आदर्शों पर भी हुआ है और पारिवारिक आदर्शों में भी अभूतपूर्व बदलाव हुए हैं।
7. **नई प्रवृत्ति**—आज के युग में लोगों ने विवाह को भी व्यवसाय बना लिया है, जिसमें वधू के गुणों की रूपरेखा विज्ञापनों के माध्यम से पहले ही निश्चित करके प्रार्थना-पत्र के द्वारा जीवन-साथी का चुनाव होता है। विवाह की यह प्रक्रिया समझौतावादी प्रवृत्ति है।

परिवार [Family]

मनुष्य के सामाजिक जीवन में परिवार का अत्यधिक महत्त्व है। इसे पूरे सामाजिक ढाँचे की नींव समझा जाता है। मानव समाज के इतिहास में परिवार सबसे प्रथम व आधारभूत सामाजिक समूह है। प्राचीन काल से लेकर आज तक परिवार सामाजिक संगठन की एक प्राथमिक और मौलिक इकाई के रूप में महत्त्वपूर्ण रहा है। परिवार एक सार्वत्रिक संस्था है। परिवार व्यक्ति के नैतिक आचरण पर जन्म से मृत्यु तक किसी-न-किसी रूप में नियन्त्रण रखती है। शिशु से यौवन अवस्था तक चरित्र निर्माण तथा सामाजिक आचरण को नियन्त्रण करने में परिवार का महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इसी प्रकार परिवार का ढाँचा, पारिवारिक सम्बन्ध, पारिवारिक अर्थव्यवस्था, पारिवारिक वातावरण और सामाजिक स्थिति आदि व्यक्ति के आपसी सहयोग व व्यवहार को निश्चित दिशा में मोड़ते हैं। सामाजिक आदर्श एवं प्रतिमान परिवार की ही देन हैं। सर्वप्रथम शिशु का समाजीकरण परिवार करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया में सामाजिक नियन्त्रण सहायक होता है। जैसे—शिशु जन्म लेता है तो वह मात्र माँस के लोथड़े के समान मात्र प्राणी होता है। जिससे जीवन का संचार रहता है। परिवार की मूल इकाई के रूप में संगठित माता-पिता को यह मुख्य कार्य सौंपा है। बच्चे के माता-पिता समाजीकरण के कार्य को सफलतापूर्वक सम्पन्न करते हैं। बच्चे के माता-पिता यदि समाजीकरण करने में असफल होते हैं तो वह बच्चा समाज विरोधी हो जाता है। निष्कर्ष; बच्चे को माता-पिता सामाजिक मनुष्य बनाने हेतु सामाजिक नियन्त्रण में रखते हैं।

परिवार जब समूहों या सदस्यों के सन्दर्भ में देखा जाता है तो यह एक समिति है और परिवार को जब नियम या कार्य पद्धति के रूप में देखा जाता है तो यह एक संस्था है। परिवार को चाहे समिति के दृष्टिकोण से देखे या संस्था के, पर इस तथ्य पर दो मत नहीं हो सकते। परिवार समाज की महत्त्वपूर्ण मौलिक इकाई है, क्योंकि सामाजिक जीवन को बनाने में एवं समाजीकरण में परिवार की एक विशेष भूमिका है। इसी कारण से चार्ल्स कूले ने परिवार को एक महत्त्वपूर्ण प्राथमिक समूह माना है। बीसेंज एवं बीसेंज का कथन है कि “परिवार मौलिक और सार्वभौम संस्था है, इस पर प्रत्येक का अस्तित्व निर्भर है।” परिवार मानव समाज की एक मौलिक इकाई है। परिवार में रहकर व्यक्ति आदर्श गुणों को अर्जित करता है। इसलिए कूले ने कहा है, “परिवार एकमात्र ऐसा समूह है, जो बच्चे के सामाजिक जीवन और आदर्शों का निर्माण करता है।” ये आदर्श ही व्यवहार को नियन्त्रित करने में अधिक सहयोगी होते हैं। परिवार के अभाव में समाज की निरन्तरता असम्भव है।

परिवार का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Family)

परिवार शब्द अंग्रेजी के फेमिली (Family) का हिन्दी रूपान्तरण है। यह लैटिन भाषा के फैमूलस (Famulus) शब्द से बना है। फैमूलस का अर्थ एक समूह है जिसमें सभी सदस्य माता-पिता, सन्तान यहाँ तक कि नौकर तथा दास तक आ जाते हैं। कुछ विद्वानों ने परिवार को एक समूह के रूप में, कुछ ने एक समिति के रूप में, कुछ ने संस्था के रूप में तथा कुछ विचारकों ने इसे एक सामाजिक इकाई के रूप में परिभाषित किया है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, “The family is an intimate domestic group made up of people related to one another by bonds of blood, sexual mating or legal ties. It is the smallest and most basic social unit, which is also the most important primary group found in any society. It is the simplest and most elementary group found in a society.”

विभिन्न विद्वानों ने परिवार को निम्न प्रकार परिभाषित किया है—

"परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते हैं जो माता-पिता तथा उनकी बच्ची के बीच पायी जाती है।"

"परिवार पर्याप्त निश्चित यौन सम्बन्ध द्वारा परिभाषित एक समूह है जो पूर्ण तथा निरन्तर रूप से सन्तान के जन्म तथा पालन-पोषण की व्यवस्था करने की क्षमता रखता है।"

"परिवार, पति और पत्नी की सन्तान रहित या सन्तान सहित या केवल पुरुष या की बच्चों सहित कम या अधिक स्थायी समिति है।"

"परिवार पति-पत्नी तथा बच्चों की एक जैविक सामाजिक इकाई के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह एक सामाजिक संस्था भी है और एक सामाजिक संगठन भी जिसके द्वारा कुछ मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती है।"

"परिवार व्यक्तियों का समूह है जो विवाह, रक्त, गोद लेने वाले सम्बन्धों से जुड़े हैं, जो एक गृहस्थी का निर्माण करते हैं जो पति-पत्नी, माता-पिता, पुत्र-पुत्री तथा भाई-बहनों के रूप में अपनी-अपनी भूमिकाओं को निभाते हुए एक-दूसरे से अन्तःसंचार तथा अन्तःक्रिया करते रहते हैं तथा एक सामान्य संस्कृति का निर्माण करते हैं।"

ब्लेयर ने परिवार को सामाजिक सम्बन्धों की व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया है। सामाजिक सम्बन्ध परिवार के विभिन्न सदस्यों के बीच पाये जाते हैं। ऑगबर्न एवं निमकोफ ने अपरिभाषा में परिवार की संरचना और संगठन को स्पष्ट किया है। परिवार का निर्माण पति-पत्नी के द्वारा होता है। सन्तानें भी परिवार में सम्मिलित होंगी। माता अथवा पिता के साथ सन्तानों के रहने वाले अथवा बिना सन्तान के समूह को भी परिवार कहा जायेगा। मैकाइवर एवं पेज के अनुसार मान्यता प्राप्त या से यौन सम्बन्ध स्थापित करने के उद्देश्य से परिवार को जन्म मिलता है। परिवार में बच्चों का जन्म तथा उनके पालन-पोषण की व्यवस्था होती है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि परिवार व्यक्तियों का एक समूह है, जिसमें माता-पिता तथा उनके बच्चे साथ-साथ रहते हैं और सामान्य उत्तरदायित्वों का निर्वाह करते हैं।

परिवार की विशेषताएँ (Characteristics of Family)

परिवार लगभग एक स्थायी समिति है जो पति-पत्नी से निर्मित होती है। चाहे उसके सन्तान हो अथवा न हो या जिसमें एक पुरुष या स्त्री अपने बच्चों के साथ रहते हैं। परिवार की मुख्य विशेषताएँ निम्न हैं—

❖ सामान्य विशेषताएँ (General Characteristics)

परिवार एक सामाजिक संस्था है, जिसको कुछ सामान्य विशेषताओं के आधार पर पहचाना जा सकता है। परिवार की सामान्य विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **वैवाहिक बन्धन एवं सन्तानोत्पत्ति (Mating Relationship and Procreation)**—संसार के प्रत्येक परिवार का आधार एक पवित्र वैवाहिक बन्धन है। सन्तानोत्पादन के द्वारा परिवार एवं वंश का विकास होता है। स्त्री-पुरुष का वैवाहिक सम्बन्ध परिवार द्वारा स्वीकृत होता है और इसी के आधार पर उनमें यौन सम्बन्ध स्थापित होते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग के फलस्वरूप ही मानव की सृष्टि होती है, जिसके फलस्वरूप परिवार की नींव पड़ती है।
2. **रक्त सम्बन्ध (Blood Relationship)**—प्रत्येक परिवार की मुख्य विशेषता रक्त बन्धन भी है। परिवार में एक स्त्री से उत्पन्न हुए सभी बच्चों में रक्त सम्बन्ध पाया जाता है एवं इसी बन्धन से परिवार का निर्माण होता है। रक्त सम्बन्ध अप्रत्यक्ष रूप से परिवार के अन्य सदस्यों, जैसे—बाबा, दादा, चाचा, चाची, भतीजा, भतीजी एवं उनकी सन्तानों आदि से भी होता है।

3. **सामान्य निवास (Common Habitation)**—परिवार के संगठित रूप से रहने के लिए सामान्य निवास स्थान की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष की कुछ खानाबदोश जातियाँ ऐसी भी हैं, जो स्थायी घरों में नहीं रहती, परन्तु अधिकांश जातियाँ समाज में स्थायी रूप से निवास करती हैं।
4. **वंश (Nomenclature)**—प्रत्येक परिवार का एक निश्चित वंश होता है। पिता के नाम पर चलने वाले परिवार को पितृवंशीय एवं माता के नाम पर चलने वाले परिवार को मातृवंशीय कहते हैं। वंश के द्वारा ब्राह्मण, वैश्य, क्षत्रिय, शूद्र आदि जातियाँ निर्धारित होती हैं। पूर्वज की मृत्यु पश्चात् भी उनके वंश का नाम उनकी सन्तानों के साथ सदैव चलता रहता है।
5. **कुछ आर्थिक व्यवस्था (Some Economic Provision)**—प्रत्येक परिवार तभी बना रह सकता है, जबकि परिवार में रहने के साधन हों। परिवार में आर्थिक व्यवस्था ठीक बनी रहे, जिससे बच्चों का पालन-पोषण उचित प्रकार से होता रहे। इसके लिए भारतीय परिवार में स्त्रियाँ घरों में कार्य करती हैं एवं पुरुष घर से बाहर नौकरी, खेती या व्यापार करते हैं।
6. **संवेगात्मक आवश्यकताओं की पूर्ति (Satisfaction of Emotional Needs)**—मनुष्य के संवेग और उद्देगों की पूर्ति अपने परिवार में ही पूरी हो पाती है। परिवार में रहकर व्यक्ति को भाई-बहिन का स्नेह, माता-पिता का वात्सल्य, पति-पत्नी का प्रेम मिल पाता है। परिणामस्वरूप वह भावनात्मक रूप से आजीवन अपने परिवार से बँधा रहता है।

❖ विशिष्ट विशेषताएँ (Distinctive Characteristics)

परिवार की कुछ महत्वपूर्ण विशिष्ट विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

1. **सार्वभौमिकता (Universality)**—प्रारम्भ से ही सभी समाजों में परिवार नामक संस्था पायी जाती है। समाज सरल हो या जटिल, सभ्य हो या असभ्य, सभी में परिवार पाया जाता है। मनुष्य जन्म से ही परिवार का सदस्य बन जाता है और मृत्यु-पर्यन्त उसका सदस्य रहता है। बिना परिवार के समाज का अस्तित्व बना रहना कठिन है।
2. **भावात्मकता (Emotionali)**—भावात्मक आधार पर ही परिवार के सदस्यों का सम्बन्ध इतना घनिष्ठ, स्थायी, सहयोगी तथा सहानुभूतिपूर्ण होता है कि एक-दूसरे के सुख-दुःख में सब कुछ न्यौछावर करने को तैयार रहते हैं। परिवार में ही स्त्री-पुरुषों की मूल प्रवृत्तियों की पूर्ति होती है, बच्चों को माँ का स्नेह मिलता है, अन्य सदस्यों में त्याग की भावना रहती है। यही भावनाएँ सदस्यों को एक-दूसरे से बाँधे रखती हैं।
3. **सीमित आकार (Limited Size)**—परिवार की एक अन्य विशेषता परिवार का आकार सीमित होना है। परिवार में वही व्यक्ति शामिल रहते हैं, जिनका सम्बन्ध रक्त से होता है। आधुनिक युग में संयुक्त परिवार का रूप एकाकी परिवार ले रहे हैं, जिनमें पति-पत्नी और बच्चे होते हैं। आज के युग में परिवारों का आकार सीमित होता जा रहा है।
4. **सामाजिक नियन्त्रण (Social Control)**—परिवार की एक अन्य विशेषता व्यक्ति के अनुचित व्यवहार पर नियन्त्रण करना है। परिवार ही बड़ों की आज्ञा मानना, छोटों से स्नेह रखना और अन्य लोगों से सहानुभूति करना सिखाता है। ये गुण सामाजिक नियन्त्रण के लिए परम आवश्यक हैं। परिवार द्वारा किये गये नियन्त्रण में सम्पूर्ण सामाजिक जीवन को व्यवस्थित रखने की क्षमता होती है।
5. **सदस्यों का असीमित उत्तरदायित्व (Unlimited Responsibility of the Members)**—परिवार के समस्त सदस्यों के उत्तरदायित्व अन्य संगठनों से अधिक व्यापक होते हैं। उत्तरदायित्व की भावना से समस्त व्यक्ति एक-दूसरे के सुख-दुःख में हाथ बैटाने को तैयार रहते हैं। परस्पर प्रेम, सहानुभूति और ममता के प्रभाव से सदस्य स्वभावतः एक-दूसरे से प्रेमपूर्ण व्यवहार रखते हैं। उत्तरदायित्व की भावना से ही माँ बच्चे के बीमार होने पर सारी रात जागकर उसकी सेवा करती है।
6. **रचनात्मक प्रभाव (Formative Influence)**—वास्तव में देखा जाये तो परिवार ही मानव स्वभाव का निर्माण-क्षेत्र है। समाज में विभिन्न स्वभाव के व्यक्ति पाये जाते हैं। उनके स्वभाव में भिन्नता का कारण उनका परिवार है। बाल्यकाल में परिवार के जो प्रभाव पड़ते हैं, वे आजीवन बने रहते हैं। एक व्यक्ति चोर बन जाता है। उसका कारण परिवार ही है, क्योंकि बचपन में उसको चोरी

करने से नहीं रोका गया। बोगर्ड्स ने लिखा है, "पारिवारिक समूह प्रथम मानवीय पाठशाला अर्थात् पारिवारिक शिक्षा सामान्यतया परिवार से ही प्रारम्भ होती है। बच्चे का सबसे प्रमुख शैक्षणिक काल परिवार में ही व्यतीत होता है।"

1. **परिवार की स्थायी व अस्थायी प्रकृति** (Permanent and Temporary Nature of Family) — परिवार संस्था के साथ-साथ एक समिति भी है। पति-पत्नी की मृत्यु के पश्चात् भी परिवार का कार्य-प्रणालियाँ व नियम सदैव बने रहते हैं। परिवार संस्था के साथ-साथ एक समिति भी है। पति-पत्नी की मृत्यु या विवाह-विच्छेद के कारण परिवार समिति के रूप में परिवार अस्थायी है। पति-पत्नी की प्रकृति स्थायी व अस्थायी दोनों प्रकार की है। इस तरह परिवार की प्रकृति परिवार ही व्यक्ति का चरित्र और व्यक्तित्व का रूप बदल जाता है। समाजीकरण में सहायक (Helpful in Socialization) — परिवार ही व्यक्ति को अपनी संस्कृति प्रदान करता है। अतः समाजीकरण करने वाली एक संस्था के रूप में परिवार का बड़ा महत्व है। परिवार व्यक्ति को समाज की संस्कृति के अनुरूप बनाता है। परिवार में बालक को समाज में प्रचलित रीति-रिवाजों, व्यवहारों परम्पराओं आदि की शिक्षा मिलती है।
2. **सामाजिक ढाँचे में केन्द्रीय स्थिति** (Nuclear Position in the Social Structure) — मानवीय समाज में परिवार की स्थिति केन्द्रीय होती है। सम्पूर्ण सामाजिक संगठन पारिवारिक इकाइयों पर आधारित होता है और समाज में श्रम-विभाजन भी परिवार के आधार पर होता है। परिवार में ही बालक जन्म लेता है, बड़ा होता है तथा उसका समाजीकरण होता है। परिवार के प्रसार से ही मानव समाज निर्माण होता है।

परिवार का एक प्राथमिक समूह है। अतः इसकी कुछ विशेषताएँ समाज की अन्य समितियों से देखने को नहीं मिलती हैं। मानव समाज के इतिहास में परिवार ही सबसे पहला सामाजिक समूह है। इसी कारण परिवार को मानव समाज की एक मौलिक इकाई माना है। परिवार में व्यक्ति की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होती है। बाल्यकाल से ही परिवार व्यक्ति के संस्कारों को निर्मित करना प्रारम्भ कर देता है। वास्तव में व्यक्ति को सामाजिक मानव बनाने वाली परिवार एकमात्र ऐसी संस्था है जो सार्वभौमिक रूप से सभी समाजों में पायी जाती है।

परिवार के कार्य (महत्व) [Functions (Importance) of Family]

परिवार का आकार और स्वरूप चाहे कैसा भी हो, परिवार का सबसे महत्वपूर्ण कार्य व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखकर उसके व्यक्तित्व का विकास करना है। संगठित परिवार अपनी रचनात्मक शिक्षाओं के द्वारा एक सामाजिक व्यक्तित्व का निर्माण कर सामाजिक जीवन को संगठित बनाते हैं। परिवार का लक्ष्य अपने सदस्यों की सर्वांगीण उन्नति करना होता है।

1. **प्राणिशास्त्रीय कार्य** (Biological Functions) — परिवार के कार्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है—परिवार के द्वारा एक ओर तो व्यक्ति की यौनिक प्रवृत्तियों को सन्तुष्टि प्रदान की जाती है तथा दूसरी ओर नैतिकता के हित में उन्हें प्रतिबन्धित किया जाता है। विवाह प्रथा के आधार पर ये दोनों बातें एक साथ सम्भव हैं। परिवार के विवाह सम्बन्धी नियम ही व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखते हैं। परिवार के द्वारा इसी से सम्बन्धित एक अन्य कार्य सन्तानोत्पत्ति का किया जाता है। परिवार बच्चे को जन्म देकर स्नेहपूर्ण वातावरण में उसका पालन-पोषण करता है। परिवार यौन सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति कर व्यक्ति के व्यवहारों पर नियन्त्रण रखता है।

कॉलमैन का कथन है, "परिवार में जो माता-पिता बच्चों के पालन-पोषण का जितना अधिक ध्यान रखते हैं, उनका व्यवहार सामाजिक रूप से उतना अधिक नियन्त्रित होता है।"

परिवार का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य यह है कि परिवार व्यावसायिक ज्ञान और औद्योगिक कौशल को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाता है। परिवार के द्वारा सम्पत्ति के प्रबन्ध का कार्य भी किया जाता है। इस प्रकार परिवार आर्थिक साधन एकत्रित करके सामाजिक नियन्त्रण का कार्य करता है।

3. **आर्थिक कार्य (Economic Functions)**—कृषि युग तक परिवार आर्थिक क्रियाओं का केन्द्र रहा है। सामान्यतया परिवार के प्रत्येक वयस्क सदस्य के द्वारा धन कमाने की क्रिया में सहयोग दिया जाता है। परिवार में समस्त लोग सामूहिक रूप से अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार धनोपार्जन करते हैं, जिससे परिवार के समस्त सदस्यों की आवश्यकताएँ समान रूप से पूरी होती हैं। परिवार के सदस्य मिल-जुलकर गृह उद्योग-धन्धे भी चलाते हैं। उदाहरण के लिए, स्विट्जरलैण्ड में घड़ी बनाने का कार्य पारिवारिक उद्योग के अन्तर्गत ही आता है।
3. **शैक्षणिक कार्य (Educational Functions)**—परिवार के द्वारा शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किये जाते हैं। बच्चे को भाषा का ज्ञान सर्वप्रथम परिवार में ही होता है। माता-पिता जो भाषा बोलते हैं, बच्चे द्वारा स्वतः ही उसे सीख लिया जाता है। स्कूल, कॉलेज आदि में तो बच्चे बाद में जाते हैं। सर्वप्रथम परिवार में ही बालक के अनेक चारित्रिक गुणों का विकास हो जाता है। देश के अनेक महापुरुषों का जीवन परिवार में निर्मित हुआ। परिवार का प्रत्येक बड़ा सदस्य अपने से छोटे सदस्य का शिक्षक होता है। अप्रत्यक्ष रूप से भी परिवार के सदस्यों के चरित्र का प्रभाव बालक पर पड़ता है। फिचर (Fichter) के शब्दों में, “परिवार की शिक्षा का उद्देश्य अपने सदस्यों को सांस्कृतिक व्यवहारों की सीख देना एवं सामाजिक नियमों को स्वीकार करने की प्रेरणा देना है।”
4. **धार्मिक कार्य (Religious Functions)**—जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में परिवार का प्रभाव पड़ता है। धार्मिक जीवन भी इसके प्रभाव से अछूता नहीं है। परिवार में व्यक्ति का धार्मिक व आध्यात्मिक विकास सम्भव होता है। बच्चे में अनुकरण करने की प्रवृत्ति होती है और जिस वातावरण में उसका पालन-पोषण होता है, उसका गहरा प्रभाव उसके मस्तिष्क पर पड़ता है। बालक के द्वारा जब अपने पारिवारिक सदस्यों को पूजा-पाठ, कीर्तन, नमाज और प्रार्थना आदि धार्मिक क्रियाओं में भाग लेते हुए देखा जाता है तो उसकी गहरी छाप उसके जीवन पर पड़ती है। उसके द्वारा इन धार्मिक तथा नैतिक संस्कारों को अपने जीवन में उतार लिया जाता है। सदाचार, नैतिकता और आध्यात्मिकता का सबसे पहला पाठ बालक परिवार में ही पढ़ता है।
5. **सांस्कृतिक कार्य (Cultural Functions)**—परिवार संस्कृति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। यह मनुष्य की सांस्कृतिक आवश्यकता की पूर्ति का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थल है। यह एक बड़ा कारखाना है, जहाँ व्यक्ति असांस्कृतिक और जैविक मनुष्य से सांस्कृतिक और सामाजिक मनुष्य में परिणित किया जाता है। परिवार में बच्चे अपने बड़े-बूढ़ों से परिवार की परम्पराएँ, मूल्य, आदर्श, रीति-रिवाजों आदि को धीरे-धीरे ग्रहण कर लेते हैं। इस प्रकार परिवार एक सांस्कृतिक केन्द्र है, जहाँ व्यक्ति संस्कृति और सभ्यता का ज्ञान धीरे-धीरे प्राप्त करता है।
6. **मनोरंजन कार्य (Recreational Functions)**—परिवार स्वस्थ मनोरंजन का भी सबसे बड़ा केन्द्र है। हँसते-खेलते नटखट बालक, उनकी तुलनाती आवाज और मीठी बातें तथा उनकी निष्कपट शरारतें आदि सब मनोरंजन के अच्छे साधन हैं, जिनसे परिवार का प्रत्येक सदस्य सुखद आनन्द का अनुभव करता है। परिवार के सदस्य आपस में मिलकर सामूहिक रूप से गीत, भजन आदि से मनोरंजन करते रहते हैं। व्यक्ति परिवार में ही रहकर अपना मनोरंजन कर अनेक अनैतिक कार्यों से बच जाते हैं। परिवार का यह कार्य भी सामाजिक नियन्त्रण का सबसे प्रभावशाली माध्यम है।
7. **समाजीकरण का कार्य (Socialization Functions)**—परिवार समाजीकरण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। परिवार में बालक कोमलता, सहानुभूति, आत्म-समर्पण तथा उत्तरदायित्व अनुभव करना आदि आवश्यक गुण सीखता है। परिवार में सीखे हुए गुणों से ही बालक आगे चलकर समाज का एक जिम्मेदार सदस्य बनता है। राइट (Wright) ने सत्य ही लिखा है, “प्रत्येक परिवार में बालक को स्वतन्त्रतापूर्वक विचार प्रकट करने और अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करने का अवसर मिलता है।” बालक अपने बड़ों के अनुकरण से बहुत कुछ सीखता है। महान् पुरुषों की महानता का बहुत कुछ कारण उनका पारिवारिक वातावरण ही रहा है। छत्रपति शिवाजी के उत्तम चरित्र के बीज उनकी माता जीजाबाई द्वारा बचपन में ही बो दिये गये थे। अमेरिका के प्रसिद्ध राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन ने अपनी आत्मकथा के बारे में स्वयं लिखा है, “मैं जो कुछ हूँ या जो कुछ भी मैं बनने की आशा करता हूँ, वह सब कुछ मेरी देवी स्वरूप माता के कारण ही है।”

8. **अन्य कार्य (Other Functions)**—उपर्युक्त कार्यों के अतिरिक्त परिवार अन्य कार्य भी करता है। परिवार के नागरिकता सम्बन्धी कार्य भी अधिक महत्वपूर्ण हैं। परिवार के नागरिकता सम्बन्धी कार्यों के आधार पर ही **ऑगस्ट कौंट** लिखते हैं, "परिवार सामाजिक या नागरिकता सम्बन्धी शाश्वत पाठशाला है।" परिवार व्यक्तियों की सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था करता है। यदि किसी भी सदस्य की सामाजिक प्रतिष्ठा या सम्मान में किसी प्रकार से आघात पहुँचता है तो परिवार उसकी इस प्रतिष्ठा और सम्मान की सुरक्षा के लिए प्रयत्न करता है।

परिवार के प्रकार (Types of Family)

परिवार को मुख्यतः निम्न पाँच आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है—

❖ अधिकार के आधार पर परिवार के प्रकार

अधिकार के आधार पर परिवार निम्न दो प्रकार के होते हैं—

1. **मातृ सत्तात्मक परिवार**—जिस परिवार का नियन्त्रण माता अथवा स्त्री में केन्द्रित होता है उस प्रकार के परिवार को मातृ-सत्तात्मक परिवार कहते हैं। ऐसे परिवार में कोई स्त्री परिवार की कर्ता होती है तथा उसी के द्वारा दूसरे सदस्यों के अधिकारों व कर्तव्यों का निर्धारण किया जाता है। आज भारत की अनेक जनजातियों में ऐसे परिवार पाये जाते हैं। जिसमें नायर, खासी तथा असम के पूर्वी भागों में रहने वाली जनजातियाँ हैं। हिन्दू तथा ईसाई परिवार में इस तरह की जातियों का कभी प्रचलन नहीं रहा।
2. **पितृ सत्तात्मक परिवार**—पितृ सत्तात्मक परिवार पुरुष प्रधान होते हैं इनमें परिवार की सत्ता किसी पुरुष में निहित होती है जिसे परिवार का कर्ता कहते हैं। ऐसे परिवारों में पुरुष कर्ता ही सदस्यों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण करते हैं तथा उसी का परिवार की सम्पत्ति के उपयोग और वितरण पर अधिकार होता है। यहाँ वंश परम्परा भी पिता के नाम तथा पिता के पक्ष से सम्बन्धित होती है। पितृसत्तात्मक परिवारों की संख्या भारत में ही नहीं बल्कि संसार के सभी भागों में सर्वाधिक है। भारत की ज्यादातर जनजातियाँ भी धीरे-धीरे पितृसत्तात्मक होती जा रही हैं।

❖ विवाह के आधार पर परिवार के प्रकार

विवाह के आधार पर भारत में सभी परिवारों को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **एक विवाही परिवार**—जब पुरुष अथवा स्त्री के द्वारा एक विवाह करके परिवार का निर्माण किया जाता है तब ऐसे परिवार को हम एक विवाही परिवार कहते हैं। इन परिवारों में कोई भी व्यक्ति एक जीवन साथी के होते हुए दूसरे से विवाह सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकता। आज सभी हिन्दू, ईसाई, जैन, बौद्ध और सिक्ख परिवार इस श्रेणी के तहत आते हैं। भारत में जैसे-जैसे विभिन्न जातियाँ सभ्यता के सम्पर्क में आती जा रही हैं उनमें भी एक विवाही परिवारों की संख्या बढ़ती जा रही है।
2. **बहुपति विवाही परिवार**—भारत में परिवारों का एक अनोखा रूप बहुपति विवाही परिवारों के रूप में देखने को मिलता है। इसका निर्माण एक स्त्री के द्वारा एक साथ कई पुरुषों से विवाह करने से होता है। भारत में खस, कोटा, टोडा, नायर, टियान, कुसम्ब और कम्मल आदि जनजातियों में आज भी ऐसे परिवार आंशिक रूप से विद्यमान हैं। विभिन्न मानव समूहों में बहुपति विवाह के द्वारा परिवार की स्थापना अप्रचलित होती जा रही है।
3. **बहुपत्नी विवाही परिवार**—जब एक पुरुष एक से ज्यादा स्त्रियों से विवाह करके परिवार का निर्माण करता है तब ऐसे परिवार को बहुपत्नी विवाही परिवार कहा जाता है। भारत में ऐसे परिवारों का प्रचलन बहुत लम्बे समय से रहा है। परन्तु सन् 1955 के बाद प्रत्येक हिन्दू, सिक्ख, जैन और बौद्ध हेतु बहुपत्नी विवाह पर कानूनी नियन्त्रण लगा दिया गया है। मुसलमानों में आज भी बहुपत्नी विवाही परिवार प्रचुरता से पाए जाते हैं। भारत की अनेक जनजातियाँ भी अभी बहुपत्नी विवाही हैं इनमें नागा, बैगा, लुशाई तथा खस जातियाँ मुख्य हैं।

❖ निवास स्थान के आधार पर परिवार के प्रकार

निवास स्थान के आधार पर परिवार को निम्न तीन श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

1. **मातृ स्थानीय परिवार**—मातृ स्थानीय परिवार में विवाह के बाद पति स्थायी रूप से या आवश्यकता पड़ने पर पत्नी के साथ या पत्नी के परिवार के साथ रहता है। सामान्यतः ये परिवार खासी, गारो तथा मालावार के नायरों में पाये जाते हैं।
2. **पितृ स्थानीय परिवार**—जैसा कि सामान्यतः होता है कि विवाह के बाद पत्नी-पति के यहाँ या पति के परिवार में निवास करती है। हिन्दुओं में ज्यादातर पितृस्थानीय परिवार पाये जाते हैं।
3. **नव स्थानीय परिवार**—इस प्रकार के परिवार में विवाह के बाद नव-दम्पति अपने परिवारों से पृथक् अपना नया परिवार बसा लेता है।

❖ वंश के आधार पर परिवार के प्रकार

वंश के आधार पर परिवार दो प्रकार के होते हैं—

1. **मातृवंशीय परिवार**—मातृवंशीय के तहत वंश का नाम माता के नाम से चलता है तथा वंश परम्पराएँ उत्तराधिकार के नियम आदि भी माता के नाम से चलते हैं। सम्पत्ति पर अधिकार माता के बाद पुत्री को प्राप्त होता है।
2. **पितृवंशीय परिवार**—पितृवंशीय परिवारों में पुरुषों की प्रधानता होती है। वंश का नाम पिता के नाम से चलता है। उत्तराधिकार के नियम एवं वंश परम्पराएँ पिता के नाम से चलती हैं। सम्पत्ति का हस्तान्तरण पिता से पुत्र को होता है।

❖ सदस्यों की संख्या और संरचना के आधार पर परिवार के प्रकार

सदस्यों की संख्या तथा परिवार की संरचना के आधार पर परिवार को निम्न दो श्रेणियों में बाँटा जा सकता है—

1. **केन्द्रीय या एकाकी परिवार**—केन्द्रीय या एकाकी परिवार में सदस्यों की संख्या कम होती है। परिवार के सदस्य के रूप में पति-पत्नी तथा उनकी अविवाहित सन्तानें होती हैं। मरडाक के अनुसार, एकाकी परिवार विवाहित पुरुष तथा स्त्री व उनकी सन्तानों से बनता है। अमेरिका तथा यूरोप में इस तरह के परिवारों का बहुत प्रचलन है।
2. **संयुक्त परिवार**—संयुक्त परिवार उन व्यक्तियों का समूह है जो कि एक छत के नीचे रहते हैं, एक ही रसोई में पका भोजन खाते हैं जो सामान्य सम्पत्ति के अधिकारी होते हैं, सामान्य पूजा में भाग लेते हैं तथा जो परस्पर एक-दूसरे से विशिष्ट नातेदारी से सम्बन्धित होते हैं। इस प्रकार के परिवार में अधिकतर सदस्य एक साथ रहते हैं तथा इस कारण से परिवार का आकार बड़ा होता है। संयुक्त परिवार को विस्तृत परिवार की संज्ञा दी जाती है।

परिवार में परिवर्तन (Changes in Family)

परिवारों में हो रहे परिवर्तनों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

1. **आर्थिक कार्यों में परिवर्तन**—परिवार के आर्थिक कार्यों में महत्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे हैं। पहले परिवार द्वारा अपने समस्त सदस्यों के आर्थिक साधन एकत्रित कर सभी की आवश्यकताओं की पूर्ति की जाती थी, लेकिन अब व्यक्तिवादिता की भावना के कारण एक व्यवसाय से काम नहीं चलता है। परिवार के विभिन्न लोग जीविकोपार्जन के लिए विभिन्न साधन अपनाते हैं और उनके लाभ अथवा हानि को व्यक्तिगत आधार पर ही निश्चित करते हैं।
2. **पुरुष की सत्ता में परिवर्तन**—परिवार में पति और पिता की सत्ता और अधिकारों की कमी हो गयी है। इससे सदस्यों की विभिन्न समस्याओं में वृद्धि हुई है। परिवार में अनुशासनहीनता का विकास

हो गया है। आज की नव-पीढ़ी पर अब परिवार का प्रभाव कम होता जा रहा है। परिवार व्यक्ति को आर्थिक सुरक्षा प्रदान करने में असमर्थ हैं। इसलिए आज के परिवार प्रभावहीन हो रहे हैं।

3. **सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यों में परिवर्तन**—परिवार के सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यों में आमूल परिवर्तन हो रहे हैं। नवीन शिक्षा-प्रणाली में प्राचीन रीति-रिवाजों व धर्म को विशेष मान्यता नहीं दी जा रही है। अतः परिवार अपने सदस्यों को संस्कृति के नये रूप की शिक्षा देता है, जिससे व्यक्ति नवीन आदर्शों को ही अधिक महत्त्व देते हैं। इससे परिवार के परम्परागत नियन्त्रण में कमी आ गयी है।
4. **मनोरंजन के कार्यों में परिवर्तन**—परिवार मनोरंजन का केन्द्र माना जाता है, लेकिन आधुनिक युग में व्यावसायिक मनोरंजन के अनेक साधन उपलब्ध हो चुके हैं। व्यक्ति सिनेमाघरों, रेडियो, टेलीविजन, क्लबों और नाटकघरों के द्वारा अपना मनोरंजन करने लगे हैं।
5. **धार्मिक कार्यों में परिवर्तन**—परिवार में हो रहे धार्मिक कार्यों में परिवर्तन प्रायः स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कुछ समय पहले परिवार धर्म का प्रमुख केन्द्र था। वह धार्मिक उत्सवों को मानकर अपने सदस्यों के धार्मिक विचारों को निर्धारित करता था, लेकिन आज के वैज्ञानिक युग में नवीन पीढ़ी धर्म में कम आस्था रखने लगी है। धार्मिक उत्सवों का महत्त्व कम होता जा रहा है।
6. **शैक्षणिक कार्यों में परिवर्तन**—परिवार के शैक्षणिक कार्यों में भी परिवर्तन हो चुका है। आजकल बच्चों को तीन वर्ष की अवस्था से ही नर्सरी में प्रवेश करा दिया जाता है। छोटी अवस्था से ही विद्यालय में भेज देने से बालक परिवार में सम्पूर्ण शिक्षा ग्रहण करने में असमर्थ रहता है।
7. **सन्तानोत्पत्ति सम्बन्धी विचारों में परिवर्तन**—सन्तानोत्पत्ति की धारणा में परिवर्तन हो गया है। सन्तानोत्पत्ति की अनिवार्यता समाप्त हो गयी है। परिवार नियोजन के अन्तर्गत सन्तति-निरोध हो रहा है। सामाजिक नियन्त्रण की दृष्टि से परिवार का स्थान कम हो गया है। इस प्रकार कम और नियोजित सन्तानोत्पत्ति तथा नियन्त्रण का अधिकार राज्यों को हस्तान्तरित कर रहा है।
8. **व्यक्तिवाद की भावना का विकास**—मनुष्य की आवश्यकताओं में वृद्धि होने से व्यक्तिगत स्वार्थ की भावना का विकास हुआ है, जिससे सदस्यों में सामाजिक गतिशीलता एवं परिवार से बाहर रहने की प्रवृत्ति में वृद्धि हुई है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि परिवार के कार्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में सहयोगी सिद्ध हुए हैं और उचित पारिवारिक वातावरण के कारण ही व्यक्ति अपना विकास करने में समर्थ रहा है। वास्तव में परिवार ही व्यक्ति को शिष्टाचार, रीति-रिवाज, आदर्श मूल्य, कर्तव्य, अधिकार आदि की शिक्षा-दीक्षा देता है। परिवार इन सब कार्यों द्वारा व्यक्ति पर सामाजिक नियन्त्रण बनाये रखता है। डॉ. बेनी प्रसाद परिवार के कार्यों के सन्दर्भ में लिखते हैं, “परिवार व्यक्ति को स्वयं के संकुचित क्षेत्र से ऊपर उठाकर दूसरों के प्रति लगाव, सहयोग व परोपकार को अपने जीवन में ले लेता है। परिवार सामान्य हित के लिए संगठन और कार्य करना सिखाता है।”

समाज निरन्तर परिवर्तनशील एक जटिल व्यवस्था है। एक सामाजिक इकाई होने के कारण परिवार के कार्यों में भी परिवर्तन हो रहे हैं, लेकिन परिवार का सन्तानोत्पत्ति, बच्चों का पालन-पोषण तथा यौन इच्छा की स्थायी सन्तुष्टि का कार्य अन्य किसी संस्था द्वारा होना सम्भव नहीं है। परिवार के कार्यों में परिवर्तन के लिए अनेक कारक उत्तरदायी हैं। इनमें से पाश्चात्य सभ्यता एवं संस्कृति, राज्य के कार्य-क्षेत्र में वृद्धि; औद्योगीकरण एवं नगरीकरण, विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी आदि प्रमुख हैं।

परिवार और धर्म (Family and Religion)

परिवार एक ऐसी संस्था है, जिसमें व्यक्ति का आध्यात्मिक विकास सम्भव है। बच्चों में अनुकरण करने की तीव्र प्रवृत्ति होती है। जिस परिवार में धार्मिक वातावरण होता है उस वातावरण का बच्चों

के मन प्रसिद्ध पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है। बालक जैसे वातावरण में पलता है, बढ़ता है, अपने वातावरण के सूक्ष्म तत्त्व बालक को वैसे ही कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। जब बालक अपने परिवार में पूजा, भजन, कीर्तन, जप, पाठ, प्रार्थना, आरती आदि कृत्यों को देखता है और बालक में सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, दया, करुणा, सहानुभूति, प्रेम, उत्साह आदि गुण उत्पन्न हो जाते हैं। इन गुणों के कारण बालक कभी कुमार्गगामी नहीं हो पाता है। नैतिकता और आध्यात्मिकता का पहला पाठ बालक परिवार में ही पढ़ता है। इस प्रकार परिवार में धार्मिक संस्कार उत्पन्न करने हेतु समाज की सर्वोत्तम इकाई है।

विवाह का परिवार के विकास में योगदान (Contribution of Marriage in the Development of Family)

विश्व के हर परिवार का प्रमुख आधार वैवाहिक सम्बन्ध ही हैं। संसार के सभी समाज, सरल समाज हों या जटिल सभी में विवाह द्वारा ही परिवार की स्थापना होती है। सन्तानोत्पत्ति द्वारा परिवार एवं वंश का विकास होता है। स्त्री-पुरुष का वैवाहिक सम्बन्ध परिवार द्वारा स्वीकृत होता है। इसी आधार पर उसमें यौन सम्बन्ध स्थापित होते हैं। स्त्री-पुरुष के संयोग से ही मनुष्य का निर्माण सम्भव हो पाता है। अतः स्पष्ट है कि वैवाहिक सम्बन्ध ही परिवार के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। विवाह सम्बन्ध ही परिवार की स्थापना का आधारभूत साधन है, जिससे परिवार की नींव पड़ती है। इस सम्बन्ध में मैकाइवर एवं पेज ने भी स्पष्ट कहा है कि "परिवार उस समूह को कहते हैं जो यौन सम्बन्धों पर आधारित है और जो इतना छोटा और स्थायी है कि इसमें बच्चों की उत्पत्ति और उनका पालन-पोषण हो सकता है।"

आधुनिक परिवार और विघटन (Modern Family and Dissolution)

वर्तमान काल में परिवार के स्वरूप और प्रकृति में बहुत अन्तर आ चुका है। औद्योगिक क्रान्ति के कारण परिवार उत्पादन की इकाई नहीं रह गया है। स्त्रियाँ पुरुषों पर आश्रित न रहकर आर्थिक मंडल से स्वतन्त्र हो गयी हैं। परिवार के अधिकांश कार्य एजेन्सियों ने ले लिये हैं। उदाहरण के लिए, भोजन का कार्य होटलों ने, वस्त्रों की धुलाई का कार्य लाउण्ड्री ने, बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी शिशुगृह एवं अस्पतालों ने ले ली है। विवाह-विच्छेद की समस्या निरन्तर बढ़ रही है। घर के अनेक कार्यों का भार मशीनों के आविष्कार से हल्का हो गया है। ऐसी परिवर्तित परिस्थितियों को नये विघटन की प्रक्रिया कहना न्यायोचित होगा।

वास्तविक दृष्टि से देखा जाये तो परिवर्तन का अर्थ विघटन से नहीं लगाया जा सकता। आज का युग परिवर्तन का युग है और समाज के सभी समूहों और संस्थाओं में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में परिवार परम्परागत व रूढ़िवादी विचारों पर ही आधारित रहकर व्यक्ति के व्यवहारों को नियन्त्रित नहीं कर सकता है। इसी कारण नवीन समाज की नवीन समस्याओं को हल करने के लिए परिवार में स्वतः ही परिवर्तन होते जा रहे हैं। अतः परिवार के उन परिवर्तनों को विघटनकारी तत्त्व न कहकर प्रगतिवादी तत्त्व कहना उचित होगा।

नातेदारी [Kinship]

नातेदारी व्यवस्था की प्रकृति सार्वभौमिक एवं सार्वकालिक है। इसका आशय यह है कि यह व्यवस्था किसी-न-किसी रूप में संसार के समस्त समाजों में तथा सभी कालों में विद्यमान रही है। हर समाज में जन्म या विवाह के कारण कुछ मानव समूह एक-दूसरे से अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो जाते हैं। इन सम्बन्धों का आधार प्रजनन की कामना होती है। इस कामना की सन्तुष्टि हेतु विवाह किया जाता है और सन्तानों की उत्पत्ति होती है। प्रजनन की कामना की पूर्ति के फलस्वरूप जिन अनेक सम्बन्धों का निर्माण होता है। उन्हें नातेदारी के सम्बन्ध कहते हैं और इन सम्बन्धों को नियोजित करने वाली व्यवस्था को नातेदारी व्यवस्था अथवा स्वजन प्रथा कहा जाता है। इस सन्दर्भ में एस.के. अग्रवाल ने उचित ही लिखा है—“Man does not live alone in society. From birth till death he is surrounded by a number of people. Some of these people are his relatives, some are friends some are neighbours while all others are strangers and unknown to him. He is bound to all those people who are related to him either on the basis of blood or marriage. The relations based on blood or marriage may be close or distant. The bond of blood or marriage which binds people together in group is called kinship.”

नातेदारी का अर्थ एवं परिभाषाएँ (Meaning and Definitions of Kinship)

नातेदारी व्यवस्था से आशय उस व्यवस्था से है जो किसी समाज में प्रस्थिति एवं भूमिकाओं की एक प्रथानुगत व्यवस्था द्वारा निकटस्थ स्वजनों के व्यवहार को संचालित एवं नियन्त्रित करती है। इस व्यवस्था में व्यक्ति एक-दूसरे से या तो एक सामान्य पूर्वज की सन्तान होने के नाते या विवाह के आधार पर परस्पर सम्बन्धित होते हैं। इस व्यवस्था के द्वारा सम्बन्धित व्यक्तियों के अधिकारों एवं कर्तव्यों का निर्धारण होता है। एस.के. अग्रवाल के शब्दों में, “The study of kinship is the study of what man does with these basic facts of life – mating, gestation, parenthood, socialization, siblingship etc.”

नातेदारी की प्रमुख परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं—

“नातेदारी प्रथा वह व्यवस्था है जो व्यक्ति को व्यवस्थित सामाजिक जीवन में परस्पर सहयोग करने की प्रेरणा देती है।”
—रैडक्लिफ ब्राउन

“नातेदारी व्यवस्था में समाज द्वारा मान्यता प्राप्त वे सम्बन्ध आ सकते हैं जो अनुमानित और रक्त सम्बन्धों पर आधारित हों।”
—मानवशास्त्रीय शब्दकोश

“नातेदारी केवल मात्र स्वजन अर्थात् वास्तविक, ख्याति अथवा काल्पनिक समरक्तता वाले व्यक्तियों के मध्य रक्त सम्बन्ध है।”
—रॉबिन फॉक्स

उपर्युक्त परिभाषाओं की व्याख्या करने से स्पष्ट होता है कि नातेदारी से तात्पर्य उन व्यक्तियों से होता है जो हम से रक्त द्वारा सम्बन्धित हों अथवा समाज द्वारा इस प्रकार के सम्बन्ध अनुमोदित हों। सामाजिक अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप जो विशिष्ट एवं समाज द्वारा मान्यता प्राप्त सुव्यवस्थित, सम्बन्ध-बृंखला एक सामाजिक प्राणी को अन्य व्यक्तियों के साथ जोड़ती है, उसे नातेदारी व्यवस्था कहते हैं। समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इन सम्बन्धों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। इस प्रकार नातेदारी के तहत सिर्फ रक्त सम्बन्ध ही नहीं आते अपितु वे सभी सम्बन्ध इस प्रणाली में शामिल हैं जिन्हें समाज मान्यता प्रदान करता है।

नातेदारी के प्रकार (भेद) (Types of Kinship)

एल. स्टोन के शब्दों में, "Kinship is the recognition of relationships between persons based on descent or marriage. If the relationship between one person and another is considered by them to involve descent, the two are consanguine (blood) relatives. If the relationship has been established through marriage, it is affinal." अतः नातेदारी व्यवस्था को निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है—

1. **विवाह सम्बन्धी नातेदारी (Affinal Kinship)**—विवाह के पश्चात् केवल स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध नहीं होता अपितु इनसे सम्बन्धित नातेदार भी एक-दूसरे से सम्बन्धित हो जाते जैसे—पुरुष पति के साथ-साथ दामाद, जीजा, फूफा, मौसा, सादू इत्यादि बन जाता है और बहू, भाभी, देवरानी, जिठानी, चाची आदि बनती हैं। इसी प्रकार कुछ अन्य सम्बन्धी साले, बहने, जीजा, साली, ससुर, दामाद, सास, बहू, देवर, भाभी इत्यादि बनते हैं। इस सन्दर्भ में एम. अग्रवाल ने उचित ही लिखा है—*"The bond of marriage is called affinal kinship. When a person marries, he establishes relationship not only with the girl whom he marries but also with a number of other people in the girl's family. Moreover, it is not only the person marrying who gets bound to the family members of the girl but his family members also get bound to the family members of the girl. Thus, a host of relations are created as soon as a marriage takes place. For example, after marriage a person becomes not only a husband, but he also becomes brother-in-law and son-in-law. Here it may be noted that in English language a number of relations created by marriage are referred by the same term. Thus, the same term brother-in-law is used for bahnoi, sala, jija and sadahu. On marriage a person also becomes foofa, nandoi and mausa. Likewise a girl on marriage becomes not only a wife but also becomes daughter-in-law, she also becomes chachi, bhabhi, devrani, jethani, mami etc. Thus, marriage creates a host of relationships which are called affinal kin."*
2. **रक्त सम्बन्धी नातेदार (Consanguineous Kinship)**—इस सम्बन्ध में वे लोग आते हैं जो रक्त के आधार पर एक-दूसरे से सम्बन्धित होते हैं; जैसे—माता-पिता और उनके बीच सम्बन्ध कभी-कभी ये रक्त सम्बन्ध काल्पनिक भी होते हैं; जैसे—नीलगिरि की बहुपति विवाही टोड जनजाति में सामाजिक पितृत्व एक विशेष संस्कार 'पुरसुपमिती संस्कार' के आधार पर निर्धारित किया जाता है। एम.के. अग्रवाल के अनुसार, *"The bond of blood is called consanguineous kinship. The consanguineous kin are related through blood whereas the affinal kin are related through marriage. The bond between parents and their children and that between siblings is consanguineous kinship. Siblings are the children of the same parents. Thus, son, brother, sister, uncle (chacha), elder uncle (tao), nephew and cousin are consanguineous kin. i.e., related through blood. In this connection it may be pointed out that blood relationship may be actual as well as supposed. Among polyandrous tribes the actual father of a child is unknown. An adopted child is treated as if it were one's own biologically produced child. Thus blood relationship may be established not only on biological basis but also on the basis of social recognition."*

नातेदारी की श्रेणियाँ (Categories of Kinship)

नातेदारी की श्रेणी से आशय सम्बन्धों के उन अंशों से है जो किसी एक व्यक्ति के तथा उसके सम्बन्धियों के मध्य होते हैं। इन श्रेणियों को निम्न तीन भागों में बाँटा जा सकता है—

1. **प्राथमिक श्रेणी सम्बन्धी (Primary Kins)**—वे व्यक्ति प्राथमिक श्रेणी सम्बन्धी कहलाते हैं जो साथ रक्त अथवा विवाह को लेकर प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। यह सम्बन्धी या तो वंशानुक्रम से

के होते हैं या विवाह समूह के। इसके अन्तर्गत पति-पत्नी, पिता-पुत्र, माता-पुत्री, पिता-पुत्री, माता-पुत्र, भाई-बहिन, भाई-भाई, बहिन-बहिन आते हैं।

2. **द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी (Secondary Kins)**—द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी वे सम्बन्धी होते हैं जो व्यक्ति से प्रथम श्रेणी के सम्बन्धी द्वारा सम्बन्धित हों। इन द्वितीयक श्रेणी के सम्बन्धियों से हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं होता, लेकिन प्रथम श्रेणी के सम्बन्धी से उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। रक्त सम्बन्धियों में हमारे चाचा जो हमारे पिता के भाई हैं, पिता के प्रथम श्रेणी सम्बन्धी हैं, लेकिन हमारे द्वितीयक श्रेणी के सम्बन्धी हुए। इसी प्रकार हमारा भतीजा जो हमारे प्रथम श्रेणी सम्बन्धी भाई का प्रथम श्रेणी सम्बन्धी है, हमारा द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी है। इसी प्रकार विवाह सम्बन्धियों में हमारी भाभी जो हमारे भाई की प्रथम श्रेणी सम्बन्धी है, हमारी द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी है।
3. **तृतीयक श्रेणी सम्बन्धी (Tertiary Kins)**—तृतीय श्रेणी सम्बन्धी वे सम्बन्धी हैं जो हमारी द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी के प्रथम श्रेणी सम्बन्धी हैं। उदाहरण के लिए, रक्त सम्बन्धियों में हमारे भतीजे का लड़का हमारा तृतीयक श्रेणी सम्बन्धी हुआ। हमारा भतीजा हमारा द्वितीयक श्रेणी सम्बन्धी है और उसका पुत्र उसका प्रथम श्रेणी सम्बन्धी है। इसी प्रकार हमारी भाभी की बहिन या उसका भाई जो भाभी के लिए प्राथमिक है, हमारा तृतीयक श्रेणी सम्बन्धी है।

नातेदारी शब्दावली (Kinship Terminology)

नातेदारी से जुड़े लोगों की शब्दावली का अध्ययन विस्तार से अमेरिका के सामाजिक मानवशास्त्री हेनरी एच. मार्गन ने किया। नातेदारी शब्दावली के द्वारा एक के रिश्तेदार की पहचान दूसरे रिश्तेदार से होती है। रिश्तेदारों की एक विशेष शब्द से सम्बन्धित रहने से रिश्ते की प्रकृति व प्रगाढ़ता का भी पता चलता है। तकनीकी रूप से मार्गन ने रिश्तेदारी को दो वर्गों में बाँटा है—

1. **वर्गीकृत शब्द (Classificatory Words)**—वर्गीकृत शब्द वे शब्द हैं जिसके व्यवहार या प्रयोग से एक शब्द के द्वारा कई सम्बन्धियों की पहचान होती है। अर्थात् एक शब्द के द्वारा कई रिश्तेदारों के सामूहिक रूप से उन रिश्तेदारों की पहचान होती है। जैसे अंग्रेजी शब्द अंकल (Uncle) से माँ की तरफ से तथा पिता की तरफ से जुड़े रिश्तेदार का पता नहीं चल पाता है क्योंकि ये शब्द दोनों रक्त सम्बन्धियों से जुड़े सम्बन्धियों के साथ-साथ, विवाह से जुड़े सम्बन्धियों हेतु भी प्रयोग किये जा सकते हैं। उसी तरह ग्रैंड फादर कहने से यह नहीं पता चलता है कि पिता के पिता या माता के पिता हेतु इस संबोधन का प्रयोग किया जा रहा है। इस तरह इन शब्दों के प्रयोग से बृहत सम्बन्धियों के साथ के सम्बन्ध का पता चलता है। पश्चिमी समाज में इसका ज्यादा प्रचलन है।
2. **विवरणात्मक शब्द (Descriptive Words)**—विवरणात्मक शब्द के द्वारा हमें सम्बन्धियों के साथ किस प्रकार का सम्बन्ध है इसकी पहचान होती है। और ये शब्द एक प्रकार से जुड़े रिश्तेदारों के लिए ज्यादा प्रयुक्त होते हैं और इस रूप में ये विशिष्ट शब्द हैं जो विशेष रूप से एक तरफ के रिश्तेदारों को संबोधित करते हैं। हिन्दी में ये विवरणात्मक शब्द जैसे-मौसी, मौसा, मामी, मामा आदि शब्द विवाह से जुड़े सम्बन्धियों के लिए ही प्रयुक्त होते हैं और इसके विपरीत चाचा, चाची, ताऊ, ताई आदि शब्द रक्त सम्बन्धियों के साथ के सम्बन्ध का द्योतक है।

नातेदारी व्यवहार (Kinship Usages)

नातेदारी व्यवस्था में विभिन्न प्रकार की रीतियाँ व व्यवहार के ढंग प्रचलित हैं। ये व्यवहार व रीतियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्धियों व नातेदारों में भिन्न-भिन्न प्रकार के होते हैं, जो एक व्यक्ति को अलग-अलग नातेदारों, कुटुम्बियों के प्रति निभाने पड़ते हैं; जैसे—पति-पत्नी, भाई-बहन, माता-पिता आदि। इनके साथ एक ही व्यक्ति को पृथक्-पृथक् ढंग से व्यवहार व रीतियाँ निभानी पड़ती हैं; जैसे—कुछ नातेदारों या रिश्तेदारों के प्रति श्रद्धा, कुछ में आपसी सम्मत सम्बन्धों तथा कुछ को अपने से छोटा मानकर उनके प्रति प्रेम-स्नेह, मधुरता, कुछ के प्रति हास-परिहास के सम्बन्ध होते हैं;

जैसे—जीजा, साली या मामा-भाँजे आदि के होते हैं। इन प्रथाओं, रीतियों के कुछ भेद हैं, जो निम्न प्रकार हैं—

1. **परिहार (Avoidance)**—नातेदारी में परिहार की रीति बहुत पुरानी है तथा लोकप्रिय भी है। परिहार का अर्थ दो रिश्तों के बीच एक सीमाबद्ध सम्बन्ध रखना होता है अर्थात् पारस्परिक अन्तःक्रिया को टाला जाने का प्रयास किया जाता है। ऐसे रिश्ते एक-दूसरे के अन्तःरंग होते हुए भी परस्पर सम्मानजनक रूप से एक-दूसरे से अलग से रहते हैं; जैसे—पुत्रवधू और उसके ससुर, जेठ तथा उसके छोटे भाई की पत्नी आदि इस रीति के अनुसार वे उनका नाम लेना या उनसे बात करना अथवा उनसे हँसी-मजाक करना वर्जित होता है। कहीं-कहीं दामाद और ससुर के बीच परिहार का सम्बन्ध पाया जाता है। **रैडक्लिफ ब्राउन** का कहना है कि नातेदारी में कुछ ऐसे सम्बन्धी होते हैं जो किसी दूसरे के प्रति व्यक्ति विशेष का आकर्षण अथवा झुकाव देखकर ईर्ष्या करने लगते हैं। इसलिए स्वस्थ पारिवारिक जीवन के लिए परिहार की रीति का पालन आवश्यक हो जाता है। **फ्रेजर** का कहना है कि इस प्रकार के निषेध यौन सम्बन्धों को नियन्त्रित करते हैं। भारतीय समाज में भी परिहार की रीति देखने को मिलती है। सास-ससुर एवं जेठ से पुत्रवधू परिहार का सम्बन्ध रखती है। इसमें ये लोग परस्पर बातचीत नहीं कर सकते। आमने-सामने नहीं आ सकते, एक-दूसरे को देख नहीं सकते या नाम नहीं ले सकते। **रिवर्स** ने कई उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनमें भाई-बहन जीवन भर परिहार का सम्बन्ध रखते हैं।
2. **हास-परिहास सम्बन्ध (Joking Relations)**—नातेदारी में इस सम्बन्ध का विशेष महत्त्व माना जाता है। **रैडक्लिफ ब्राउन** के अनुसार, परिहास सम्बन्ध दो व्यक्तियों का ऐसा सम्बन्ध है, जिसमें प्रथा द्वारा दोनों व्यक्तियों को इस बात की छूट दी जाती है कि वे आपस में हँसी-मजाक करें, एक-दूसरे को तंग करें और वे परस्पर एक-दूसरे की बात या हँसी-मजाक का बुरा न मानें। इसके अन्तर्गत हँसी-मजाक, गाली-गलौज, यौन सम्बन्धी भद्दी बातें या यौन सम्बन्धी मजाक करने की छूट होती है। देवर-भाभी, जीजा-साली, ननद-भाभी, साले-बहनोई, दादा-पोती, फूफा-भतीजी, चाचा-भतीजा आदि के साथ परिहास सम्बन्ध होते हैं, जो परस्पर हँसी-मजाक कर सकते हैं। **रैडक्लिफ ब्राउन** का कहना है कि परिहास सम्बन्धों का एक प्रतीकात्मक अर्थ होता है, जो मैत्री व घनिष्ठता का प्रतीक होता है। होली पर तो हास-परिहास अपनी चरम सीमा पर पहुँच जाता है। इस प्रकार हास-परिहास सम्बन्ध पारिवारिक जीवन को सरस व सजीव तथा आनन्ददायक बना देता है।
3. **माध्यमिक सम्बोधन (Teknoymy)**—नातेदारी की इस रीति के अन्तर्गत कुछ सम्बन्धियों को उनके नाम से पुकारना या उनका नाम लेना वर्जित है अर्थात् किसी को माध्यम बनाकर दूसरे को सम्बोधित किया जाता है। इसीलिए इसे माध्यमिक सम्बोधन कहा जाता है; जैसे—आज भी गाँवों में स्त्रियाँ अपने पति का नाम नहीं लेती और पति भी अपनी पत्नी का नाम नहीं लेता है। ऐसी स्थिति में वे परस्पर बातचीत के लिए अपने किसी बच्चे को माध्यम बनाकर बात करते हैं। रामू की अम्मा या रामू के पिताजी कहकर सम्बोधित करते हैं। **टायलर** ने सर्वप्रथम माध्यमिक सम्बोधन शब्द का प्रयोग किया।
4. **मातुलेय (Avunculate)**—इस रीति के अनुसार मामा द्वारा अपने भाँजे एवं भाँजियों को अन्य सभी सम्बन्धियों या नातेदारों की तुलना में अधिक महत्त्व या प्राथमिकता प्रदान की जाती है। यह रीति अधिकतर मातृसत्तात्मक परिवारों में पायी जाती है। इससे मामा का भाँजे-भाँजियों पर उनके पिता से भी अधिक अधिकार होता है। भाँजे भी पिता की बजाय मामा के लिए कार्य करते हैं।
5. **पितृश्वश्रेय (Amitate)**—नातेदारी की रीति के अनुसार इसमें पिता की बहन अर्थात् बुआ की विशिष्ट भूमिका या महत्त्व होता है। बुआ ही भतीजे के लिए बहू दूँढ़ती है, वही अपने भाई के बच्चे के पोषण, नियन्त्रण आदि का उत्तरदायित्व निभाती है। टोडा जनजाति में बुआ ही बच्चे का

नामकरण करती है। चैपल तथा कून का कहना है कि जिन सम्बन्धियों में विवाह उपरान्त सामाजिक अन्तःक्रिया शिथिल पड़ने लगती है तो उसे सक्रिय बनाये रखने के लिए इस प्रथा का जन्म हुआ है, क्योंकि बुआ विवाह पश्चात् दूसरे के घर चली जाती है, अतः उससे सम्पर्क और घनिष्ठता बनाये रखने के लिए यह प्रथा या रीति प्रचलित है।

सह-प्रसविता (Couvade)—इस रीति का सम्बन्ध प्रसव काल से होता है। इसके अन्तर्गत जब किसी पुरुष की पत्नी गर्भवती होती है तो उसके पति को उन सारे निषेधों का पालन करना होता है, जो गर्भवती करती है; जैसे—पति को भी प्रसवा पत्नी के कमरे में रखा जाता है और उसे भी प्रसवा की तरह अछूत माना जाता है, जो प्रसवा खाती है, वही खाना उसको भी खाना पड़ता है अर्थात् पति को उन सारे निषेधों का पालन करना पड़ता है, जो गर्भवती पत्नी करती है।

यथार्थ में नातेदारी व्यवस्था सभी समाजों में एक आधारभूत व्यवस्था है। सरल एवं जटिल समाजों, ग्रामीण एवं नगरीय समाजों, आदिम अथवा आधुनिक समाजों में इसके स्वरूप में भिन्नता पायी जाती है। कोई भी व्यक्ति समाज में अकेला नहीं रहता है। जीवनपर्यन्त वह अनेक व्यक्तियों से घिरा रहता है। लेकिन इन सभी व्यक्तियों में महत्त्वपूर्ण एवं घनिष्ठ सम्बन्ध उन व्यक्तियों के साथ होते हैं जो कि सम्बन्ध और विवाह सम्बन्ध के आधार पर सम्बन्धित होते हैं। समाज द्वारा मान्यता प्राप्त इन सम्बन्धों का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। अतः स्पष्ट है कि विश्व के सभी समाजों में नातेदारी व्यवस्था पर सम्बन्ध आधारित होते हैं।